अमर शहीदों के सरदार इमाम हुसैन[अ०]

प्रोफेसर अल्लामा अली मुहम्मद नक़वी साहब क़िब्ला, अलीगढ़
उर्दू अनुवादः बिन्ते ज़हरा नक़वी नदल हिन्दी साहेबा
हिन्दी अनुवादः मु० र० आबिद

इमाम हसन[अ०] ने ''सन्धि'' को स्ट्रेटिजी बनाया था और इमाम हुसैन[अ०] ने ''शहादत'' को, मगर ये दो अलग जंगें नहीं है बल्कि इन्हें एक ही जंग के ''दो हिस्से'' समझना चाहिए। 61[हि०] (680[ई०]) में मुआविया, यज़ीद की सूरत में उभरता है और इमाम हसन[अ०] की माहिराना स्ट्रेटिजी के नतीजे में निफ़ाक़ के चेहरे को अपनी आड़ में छुपाने वाला मुखौटा टुक्ड़े-टुक्ड़े हो जाता है। इमाम हुसैन[अ०] के लिए यही मौक़ा था कि सीधे तौर पर मुक़ाबला करके यज़ीदियत को अपने ख़ून के समन्दर में डुबोकर हमेशा के लिए ख़त्म कर दें। फिर तो उन्होंने ऐसा ही किया।

इमाम हुसैन[अ०] ने मुक़ाबला क्यों किया?

इस्लाम के सीधे रास्ते से हट जाना धीरे-धीरे इस्लाम के पैग़म्बर[स०] के बाद ही से शुरु हो गया था। ''इमामत'' को किनारे कर उसकी जगह ''ख़िलाफ़त'' ने ले ली थी मगर अमीर मुआविया के ज़माने से ''ख़िलाफ़त'' भी बदल कर ''साम्राज्य'' की शक्ल में आ गई थी और इस्लामी दुनिया में क़ैसर और किसरा का क़ानून चल पड़ा था और ये अबूसुफ़यान का बेटा और क़ैसर-किसरा के कल्चर का वारिस ''मुसलमानों के ख़लीफ़ा'' के नाम से ख़िलाफ़त की गद्दी पर क़ब्ज़ा करके एक ख़तरनाक बदलाव को जन्म दे रहा था और इस्लाम के सीने में जिहालत का ज़हर फैला रहा था और उसे ''मुहम्मदी दीन'' के नाम से पेश कर रहा था और इस बात का ख़तरा पैदा हो गया था कि कुछ ही पीढ़ियों में असल इस्लाम, ताक़ों में सज कर रह जाएगा और बुरे राज करने वालों का चाल-चलन इस्लाम का नमूना समझा जाने लगेगा।

इस ख़तरे को भांपने से समाज बिल्कुल बेपरवाह था। उस पर हालात ऐसे थे कि समाज के अन्दर ''छल'' को ''हक़'' (सत्य) पर और ''सियासत'' (राज) को ''सच्चाई'' पर जीत मिली हुई थी, ''नादानी'', ''समझदारी'' पर छायी हुई थी। इस्लामी राज के बहुत से इलाक़ों के आम लोग जो हेजाज़ से काफ़ी दूर थे, इस्लामी सच्चाई से अन्जान थे, दमिश्क़ के महल में राजगद्दी पर ठाठ से बैठने वाले ख़लीफ़ा को वह इस्लामी नमूना समझते थे और उसके ख़िलाफ़ खड़े होने को ''इस्लामी रहबर'' के ख़िलाफ़ बग़ावत समझते थे। हेजाज़, मक्का, मदीना, इराक़ और ख़ुरासान की जनता ज़्यादा जानकारी रखने के बाद भी (सरकारी) रोक वाले हालात से डरी हुई थी। एक अकेला कूफ़ा था जो शाम की हथियारों से सजी फ़ौज से मुक़ाबले को बर्दाश्त नहीं कर सकता था। ''मरजसी'', ''सूफ़ी'' और ''जबरी'' जैसे नये-नये फ़िरक़े और मत अपने रंगारंग विचारों के मुताल्लिक़ जनता के सामने तरह-तरह की बातें सही ठहरा रहे थे। 61[हि०] में लगभग ऐसे ही हालात थे और जनता के ज़हनों को सुला देने की कोशिश की जा रही थी।

इमाम हुसैन[अ०] इन हालात से मुक़ाबला, दीन के मोर्चे की हिफ़ाज़त, इस्लाम की असलियत के बचाने, ज़ुल्म और ज़्यादती के मिटाने और इस्लाम को महल में

बैठे ख़लीफ़ा के पंजे से आज़ाद कराने के लिए हक़ परस्तों के साथ उठ खड़े हुए। जब हक़ वालों के लिए बातिल (अधर्म) की ताक़तों पर जीत पाना मुमकिन न था, ज़ुल्म को इस तरह रुसवा करना कि वक़्त के बहाव के साथ उसका नाम और निशान मिट जाए, जिस वक़्त फ़ौजी ताक़त से ज़ुल्म की बिसात पलटना मुमकिन न हो, उस वक़्त शहादत को अपनाना चाहिए। यानी अपनी और अपने प्यारों की जानें क़ुर्बान करके ज़ुल्म को रुसवा और ज़ालिम को नंगा करें। इसलिए इमाम हुसैन[अ०] ने उसी तरीक़े को चुना।

अलबत्ता इमाम हुसैन[अ०] के मुक़ाबले पर उस वक़्त तीन तरह के गिरोह और तीन अन्दाज़ की सोच थीः

1- यज़ीदीः वह लोग जो हक़ के मुक़ाबले में मोर्चाबन्द, ज़ुल्म करने और सताने वाले, ताक़त और धन वाले लोग, सरफिरे और सितम करने वाले लोगों का नमक खाने वाले।

2- नसीहत करने वाले और ढलवाँ लोगः जो समझौते, नर्मी और सुझाव की तरफ़ थे।

3- आम लोगः जो इन मामलों से बेख़बर और सिर्फ़ एक तमाशा देखने वाले थे।

तारीख़ (हिस्ट्री) में जब भी धर्म और अधर्म के बीच जंग हुई है, ये तीनों गरोह भी हमेशा पाये गये है। जो लोग ऊपर बताए गए दूसरे गरोह से जुड़े थे (यानी नसीहत करने वाले और साथी) उन्होंने इमाम हुसैन[अ०] को नसीहत की और मश्वरा दिया कि वह सुझाव को देखते हुए काम लें, यज़ीद से समझौता कर लें, मगर इमाम हुसैन[अ०] शहादत और क़ुर्बानी के रास्ते को तैय कर चुके थे, इसलिए वह उसी रास्ते पर आगे बढ़े और अपनी इमामत की ख़ुसूसियत को उन्होंने बाक़ी रखा।

हार में जीत

देखने में कर्बला की जंग आधे दिन में ख़त्म हो गई। सभी इन्क़ेलाबी शहीद हो गए सिवाए उन कुछ कर्बला के सन्देसियों के, जो पैग़ाम पहुँचाने की ज़िम्मेदारी का बोझ अपने कन्धों पर उठाए हुए थे। यूँ तो इन्क़ेलाबी शहीद, कर्बला में अपने ख़ून में डूबे हुए सो रहे थे मगर इन्क़ेलाब जाग चुका था। दीन पर चलने वाले मिट्टी और ख़ून में लतपथ पड़े थे, मगर दीन नजात पा चुका था। देखने में यज़ीद को जीत ज़रूर मिली थी, मगर तारीख़ की गहराई में वह एक सबसे बुरी हार खाया हुआ इन्सान था और हुसैन[अ०] को दिखने वाली हार के रूप में हुसैन[अ०] एक बड़ी जीत पा गये थे। मौत ने अपने हाथों से उन्हें अमर हो जाने का तोहफ़ा भेंट किया।

कर्बला में हुसैन[अ०] और हुसैनियों के तारीख़ी कामों का नतीजा क्या हुआ? हुसैन[अ०] हार गए या जीत पा गए?

हर आन्दोलन और हर काम की हार और जीत को उसके मक़सद की सच्चाई और उसके मक़सद के लेहाज़ से समझना चाहिए। हुसैन[अ०] की शहादत से यज़ीद के तीन मक़सद थे। पहला मक़सद था सच की आवाज़ को ऊँचा करने वालों का गला घोंटकर सच की बोली को दबा देना, दूसरा मक़सद था उमैयावी सिस्टम और अबूसुफ़यान के ख़ानदान की हर मुख़ालफ़त को कुचल देना, और तीसरा मक़सद था ''मुहम्मद[स०] के इस्लाम'' से अबूसुफ़यान की जगह बदला लेना। मगर इन में से उसका कोई मक़सद भी पूरा न हो सका और हुसैन[अ०] के ख़ून ने सत्य को ऊँचा करने वालों की गुहार और अनशन को तगड़ा बना दिया और हुसैन[अ०] की शहादत उमैया राज के लिए ज़लज़ला, उमवी सियासी ताक़तों को सौ साल से भी कम मुद्दत में मिटाने और तारीख़ में यज़ीदियत को ज़लील और रुसवा करने का कारण बन गई और सत्य की आवाज़ ऊँची से ऊँची होती गई।

इस के मुक़ाबले में इमाम हुसैन[अ०] का मक़सद ''सच्चे इस्लाम'' को ''राज वाले इस्लाम'' से अलग कर देना था जिससे यज़ीदियों के कर्म को एक बुरे राजा का चलन ही समझा जाए, इस पर इस्लामी नमूने का धोका न हो। इमाम हुसैन[अ०] ने अपने इरादे और अपने मक़सद को ताक़त दी और इस्लामी सरहद पर अपने ''ख़ून'' की गहरी और अनमिट लकीर खीच कर इस्लाम को शासकों के चलन से अलग कर दिया। बहुत से मुसलमान यज़ीद से पहले के ख़लीफ़ाओं के चाल-चलन को ''इस्लामी नमूना'' और ''सनद'' (प्रमाण) समझते हैं, मगर हुसैन[अ०] की क़ुर्बानी ने यज़ीद और दूसरे राज

करने वालों के चाल-चलन और मिसाली इस्लामी चलन के बीच जो पूरब-पच्छिम की दूरी थी, उसे सूरज की तरह चमका दिया, यहाँ तक कि अहलेसुन्नत भी यज़ीद और बाद के ख़लीफ़ाओं के चाल-चलन को भरोसे वाला नहीं मानते।

इमाम हुसैन[अ०] का मक़सद तारीख़ में यज़ीद को रुसवा करना, इस्लाम की सच्चाई की हिफ़ाज़त और इस्लाम के सच्चे पैग़ाम को अमानत के तौर पर तारीख़ के हवाले कर देना था। हम देखते हैं कि यज़ीद अपने किसी मक़सद में भी कामयाब न हो सका जबकि हुसैन[अ०] अपनी शहादत के ज़रिये अपने हर मक़सद में कामयाब रहे और ये इस बात का सब से बड़ा सुबूत है कि कर्बला की जंग में जिसे सबसे महान जीत मिली वह हुसैन[अ०] थे और जिसे सबसे बुरी हार मिली और जो नेस्तोनाबूद होकर 'ना' हो गया वह यज़ीद था, यज़ीदियत थी। ये एक खुली सच्चाई है कि जो जीतता है वह अफ़सोस नहीं करता, पछताता नहीं, इसके उलट जो हारता है और नुक़सान उठाता है वह दुख और पछतावे का शिकार हो जाता है। हम तारीख़ (History) से पूछते हैं कि अफ़सोस किसको हुआ, हुसैन[अ०] या यज़ीद को? यह जंग कर्बला के रेगिस्तान में जीत और हार को तौलने की एक कसौटी हो सकती है।

अभी कर्बला वालों की जंग को ज़्यादा समय नहीं बीता था कि यज़ीद ने कर्बला के क़ैदियों को मदीना वापस भेज देने का फ़ैसला कर लिया। इसकी वजह ये थी कि वह देख रहा था कि दमिश्क़ और इस्लामी दुनिया के हर तरफ़ शहीदों के ख़ून से इन्क़ेलाब के फूल खिलने लगे हैं। कर्बला के क़ैदियों की वापसी यज़ीद के पछतावे और हार के एहसास की निशानी है। ज़ैनब[स०] और सज्जाद[अ०] की ख़्वाहिश है कि हुसैन[अ०] और कर्बला की याद हमेशा ज़िन्दा रहे, जबकि यज़ीदी चाहते हैं कि ''कर्बला'' जल्दी से जल्दी मन से मिट जाए- क्यों? सिर्फ़ इसलिए कि शहीदों के ख़ून की बाढ़ में उन्हें अपनी जीत तिनके की तरह बहती और हार की ख़तरनाक लहरें अपनी तरफ़ बढ़ती हुई नज़र आ रही थीं।

कर्बला के वाक़ेओं को अभी पाँच साल भी न बीते थे कि यज़ीद जहन्नम वासिल हुआ और अपने बाप और दादा के तख़्त पर यज़ीद का बेटा मुआविया आया। उसके राज में आते ही अबूसुफ़यान के ख़ानदान की सलतनत ख़त्म हो गई और उसकी जगह मरवान और उसकी औलाद ने राज की बागडोर संभाली। मगर उन्हें नये इन्क़ेलाब का सामना करना पड़ा और सभी आन्दोलनों को लेकर उठने वालों का नारा था ''हुसैन[अ०] के ख़ून का बदला''। इसलिए मुख़्तार का इन्क़ेलाब, इब्राहीम का उठना, तव्वाबीन और सुलेमान बिन सर्द ख़ज़ाओ, ज़ैद और यह्या वग़ैरा के उठने ने उमवी राज को हिला दिया यहाँ तक कि सौ साल से भी कम मुद्दत में बनी उमैय्या का ख़ात्मा हो गया और उसकी जगह हुसैन[अ०] और हुसैन[अ०] के ख़ून का बदला चाहने वालों के नाम पर अब्बासी राज में आ गए।

इमाम हुसैन[अ०] क्यों शहीद हुए?

इसलिए कि समाज को जगाएं। इमाम हुसैन[अ०] अपनी सच्चाई के ज़रिये और अपना ख़ून बहाकर इस्लामी समाज को बेहोशी की नींद से चौंकाना चाहते थे, कर्बला के वाक़ेओं से पहले लोगों की बेपरवाही इस हद तक पहुँच चुकी थी कि ख़लीफ़ा ने जुमे की नमाज़ बुध के दिन पढ़वाई और सभी ने पढ़ी, मगर कर्बला के बाद ये सभी फिराव और चालें सौ साल से भी कम मुद्दत में ख़त्म हो गईं।

कर्बला में ख़ून का एक धमाका हुआ और इस बड़े धमाके की लहरों ने सारे इस्लामी राज में फैलकर एक ज़लज़ला पैदा कर दिया। एक लम्बे ज़माने तक यज़ीद को रुसवा किया। यही नहीं बल्कि इस बड़े धमाके से तारीख़ के पथरीले सीने से एक ऐसा सोता फूटा जिसके बहाव से इस्लाम हमेशा-हमेशा जीवन लेता रहेगा।

इतिहास में कर्बला का अमर रहना हाबील और क़ाबील की ताक़तों में टकराव

मूसओ फिरऔनो शब्बीरो यज़ीद
ईं दो क़ुव्वत अज़ हयात आमद पदीद

('इक़बाल')

इस्लाम में जिसका विश्वास तौहीद (ख़ुदा को एक

मानना) और क़यामत पर है, दुनिया पैदा करने वाले सिरजनहार की समझ, इरादे और मक़सद का भी मानने वाला है और ''हिस्ट्री के एके'' को भी मानता है। हिस्ट्री पिछले वाक़ेओं का ऐसा जमाव है जो इत्तेफ़ाक़ से पैदा होकर ख़त्म न होने वाला बल्कि लगातार चलने वाली 'होनी' बातों का एक सिलसिला है जैसे सफ़र करने वाला कोई कारवाँ जो इन्सान के जीवन शुरु होने के साथ चालू हुआ और बिना रुके एक ओर लगातार चलता चला जा रहा है। इस आज और कल के सोते में हर ''बीता हुआ कल'' एक ''आज'' को जन्म देता है। हर 'आज' हर वर्तमान, बीते कल 'भूत' से जन्म लेता है। और हर बीता कल 'आज' की कमाई का अमानतदार होता है। धरती पर इतिहास इन्सान के साथ चलता है। जो बातें इतिहास पर राज करती हैं उन्हें ''सुनने इलाही'' (भगवान-चलन) कहते हैं। इन ''सुनने इलाही'' में एक ये भी है कि ''सत्य'' हमेशा ''असत्य'' से टकराता रहता है, ''ज्ञान'', ''अनजानपन'' से लड़ता रहता है। ईमान (धर्म) भी कुफ्र (अधर्म) से जंग करता रहता है और बहकाव से ख़ुदाई बुनियादों की भिड़न्त, चलती रहती है। ये जंग हज़रत आदम[अ॰] से शुरु होती है और इसके बाद से इतिहास, हाबील और क़ाबील की खींचातानी की धुरी पर घूमता रहता है। हर दौर, हर ज़माने और हर जगह में सत्य नबियों और मोमिनों की अगुवाई में अधर्म के डॉनों से भिड़ता रहता है। इब्राहीम[अ॰] और नमरूद, मूसा[अ॰] और फ़िरऔन, और मुहम्मद[स॰] और अबूलहब, अबूजहल, अबूसुफ़यान। ये सभी मरहले हमेशा चलते रहते है, ये जंग एक बीती जंग नहीं बल्कि हिस्ट्री का एक सिलसिला है जो हर ज़माने में दोहराया जाता है।

''हक़'' और ''बातिल'' सत्य और असत्य की ये जंग हिस्ट्री के फ़लसफ़े का रुख़ इस्लाम की ओर मोड़ती है। कर्बला इस जंग की सबसे बड़ी चमक और सबसे उजागर मैदान है, जिसने ''सत्य'' और ''असत्य'' की जंग के ऐसे-ऐसे पहलू सामने किये हैं कि इसके बाद से होने वाले हर ''सत्य'' और ''असत्य'' के टकराव को कर्बला की कड़ी कहना चाहिए। कर्बला एक ऐसी धारा है जो इन्सानी इतिहास की शुरुआत के साथ चालू हुई है और जो 'आज' को अपनी लपेट में लेती हुई 'आने वाले कल' की तरफ़ बहती चली जाती है।

हुसैन[अ॰], इतिहास के धारे के वारिस

''ज़ियारत वारिसा'' असल में इतिहास के फ़लसफ़े के बारे में शिया सोच का एलान है। ये ज़ियारत पुकार-पुकार कर कहती है कि हुसैन[अ॰] एक आदमी नहीं बल्कि पिछली हिस्ट्री के वारिस हैं। हुसैन[अ॰] उस अलम के वारिस हैं जो इन्सानी हिस्ट्री में बातिल, ज़ुल्म, ज़ोर, भटकाव, और जाहिलियत के मूल्यों (Values) के ख़िलाफ़ होने वाली जंग में हाथों हाथ होता हुआ हुसैन[अ॰] तक पहुँचा है। वह आदम[अ॰] के वारिस, नूह[अ॰] के वारिस, इब्राहीम[अ॰] के वारिस, मूसा[अ॰] के वारिस, ईसा[अ॰] के वारिस, हज़रत मुहम्मद[स॰] के वारिस, अली[अ॰] के वारिस और हसन[अ॰] के वारिस हैं। अगर क़ुरआन को पढ़कर देखा जाए कि हाबील, नूह, इब्राहीम और मूसा किन मूल्यों (Values) के परचमदार थे और किन ताक़तों और मूल्यों के ख़िलाफ़ लगे हुए थे, तो मालूम होगा कि हर ज़माने में छोटी सही, मगर एक कर्बला ही का वजूद रहा। ज़माने के आगे बढ़ते हुए क़दमों के साथ चलते हुए जब हम क़ुम के बड़े मुज़ाहरे और 17-शहरयूर की कामयाबियों और ख़ूनीं शहर और अबादान के मनज़रों तक पहुँचते हैं तो हमें महसूस होता है कि ''कल'' की कर्बला खिंच कर ''आज'' के हालात में ढल गयी है और हम यह मान जाते हैं कि कर्बला कभी ख़त्म नहीं हो सकती और कर्बला हर दौर में दोहरायी जाती रहेगी।

देखने में इब्राहीम[अ॰], मूसा[अ॰] और हुसैन[अ॰] के बीच सदियों की दूरी है, फिर भी हुसैन[अ॰] सीधे आदम[अ॰], इब्राहीम[अ॰], मूसा[अ॰] और ईसा[अ॰] के वारिस हैं, और नमरूद और फिरऔन सिर्फ़ अपने बल का इस्तेमाल करने वाले हैं जो उन इन्सानों को जिन्हें सिर्फ़ एक अकेले ख़ुदा के आगे झुकना और उसकी इबादत (भक्ति) करना चाहिए, अपने आगे झुकाना चाहते हैं और उनसे अपनी पूजा करवाना चाहते हैं। मूसा[अ॰] इसी उसूल के ख़िलाफ़ खड़े हुए थे और फिरऔन से टकराए थे ताकि इन्सानों को अधर्म (और समय के रावण) की पूजा से

नजात दिलाएं। इसलिए मूसा[अ०] ने दरबार में फिरऔन से माँग कीः ''ख़ुदा के बन्दों (दासों) को मुझे वापस कर दे, मैं तेरी तरफ़ से भेजा हुआ ख़ुदा का अमीन हूँ। (दुख़ान, आयत-18) ''तूने बनी इस्राईल को दास बना लिया है।'' (शोअ्‌रा, आयत-22) हुसैन[अ०] भी ज़ुल्म और सितम, ताक़त, बल और राज के ख़िलाफ़ खड़े हुए और अकेले एक बड़े राज से टकरा गए जैसे हुसैन[अ०] ये कह रहे हों कि अगर तुम्हारे पास दीन नहीं है तो कम से कम दुनिया में तो आज़ाद रहो।

आज भी इन्सान की मुख़ालिफ़ अधर्मी ताक़तें, पूरब और पच्छिम का साम्राज की शक्ल में, रीगन, बिरेज़नीफ़ और सद्दाम के रूप में कमज़ोर समाजों को, जो यज़ीद के ज़माने के मुसलमानों और बनी इस्राईल की तरह हैं, अपने शिकन्जे में जकड़े हुए हैं और हुसैनी ताक़तें ज़माने के यज़ीदों से टकरा रही हैं और हुसैन[अ०] के पीछे में माएं अपने कमसिन और जवान यानी अली अकबर और अली असग़र के ग़ुलामों को इस्लाम पर क़ुर्बान कर रही हैं। आप ग़ौर करें कि आबादान और ख़ूनी शहर में धर्म और बातिल के बीच छिड़े मोर्चे पर क्या हो रहा है?

मूसा[अ०] के जवाब में फ़िरऔन का कर्म क्या था? माद्दी ताक़तों के ज़रिये हक़ की आवाज़ को दबाने की कोशिश करना। फिरऔन ने कहाः ''छोड़ दो, मैं मूसा को क़त्ल कर दूँ। मगर मैं देख रहा हूँ कि क्या वह तुम लोगों को नये विचार और नया अक़ीदा देता है या ज़मीन पर बिगाड़ फैलाता है'' इमाम हुसैन[अ०] भी इसी जवाबी कर्म से दोचार थे।

किताब 'नासिख़ुत्तवारीख़' में हैः- यज़ीद ने मदीना के गवर्नर वलीद को लिखाः ''अगर हुसैन[अ०] सुपुत्र अली[अ०] बैअत न करें (अपना हाथ न दें) तो इस ख़त के जवाब में उनका सर मेरे पास भेज दो'' जिस वक़्त हुसैन[अ०], यज़ीद के गर्वनर, वलीद के सामने थे, मरवान ने क्या कहा? उसने कहाः ''हुसैन[अ०] पर नज़र रखो यहाँ तक कि या तो वह बैअत करें या उनका सर काट दो'' जवाब में इमाम[अ०] ने कहा' ऐ नापाक और गन्दी औलाद! तू मेरी मौत का हुक्म देता है? ख़ुदा की क़सम तूने झूट कहा और इसके लिए तुझे सज़ा भुगतना पड़ेगी।''

यज़ीदों, फिरऔनों, रीगनों, आर्यमेहरों और सद्दामों का यही एक सा तरीक़ा है कि हथियारों के ज़ोर पर सत्य के तरफ़दारों को ख़ून में डुबो देते हैं जिससे वे मौजूदा हालात को अपने तरफ न कर सकें और उसे वे फ़साद, बवाल और बग़ावत का नाम देते हैं। इसकी बिल्कुल खुली तस्वीर कर्बला में सामने लायी गई थी और हुसैन[अ०] ने ख़ून के ताक़तवर तूफ़ान से दुश्मन के हथियार और धन दौलत, राज हटधर्मी की इस हिस्टोरिकल लॉजिक को हमेशा के लिए ख़त्म कर दिया। इस हुसैनी महासंग्राम को गुज़रे चौदह सौ साल हो गए, मगर आज भी जब कभी कहीं सच असत्य से टकराता है तो बातिल उसी उसूल पर काम करता है और हक़ की हिफ़ाज़त करने वाले भी जंग के मोर्चे पर कर्बला की बहादुरी दोहराते हैं और ख़ून के बलबूते तलवार पर जीत पाकर हुसैन[अ०] के पीछे चलते हैं और इस तरह इतिहास के धारे पर कर्बला का सिलसिला चलता रहता है।

फ़िरऔन के बारे में क़ुरआन कहता हैः ''फिरऔन के ख़ास जुर्मों में से एक ये भी था कि वह इन्सानों को नस्ल, जाति के आधार पर बांटता था और गरोहों को दबाए रखता था।'' (क़सस, आयत-4)

61[हि०] में इमाम हुसैन[अ०] का पाला इसी तरह से पड़ा था, जाहिलियत की बातें जाति-क़बीले के जुड़े द्वेष बैर दोबारा सर उठा रहे थे, इस्लामी समाज के कमज़ोर लोग ज़ुल्म और सितम का शिकार हो रहे थे। ऐसे में इमाम हुसैन[अ०] भी हज़रत मूसा[अ०] की तरह इस सूरतेहाल को ख़त्म करने के लिए उठ खड़े हुए।

ये सच्चाई है कि इमाम हुसैन[अ०], आदम[अ०], नूह[अ०], इब्राहीम[अ०] और मूसा[अ०] के वारिस थे, लेकिन क्या आज अमेरीका, रूस और उनका नमक खाने वालों की साम्राजीपन का मुजरिमों वाला तरीक़ा कुछ अलग है? ऐसे मौक़े पर कर्बला के उजालों के वारिस और हुसैन[अ०] की पैरवी करने वाले आज भी ख़ुमैनी या उन जैसे लोग बातिल ताक़तों से टकरा रहे हैं। ये है आज की तारीख़ पर कर्बला की छाप।

जवाब में हुसैन[अ०], मूसा[अ०], इब्राहीम[अ०] और उनके मानने वालों का रवैया क्या है। उनका रवैया एक ही लाजिक से निकल रहा है यानी ''ला'' और ''इल्ला'', ''हाँ'' और ''नहीं''। हर ''ताक़त'', ''सितम'', ''असत्य'' और ''शैतान'' के मुक़ाबले पर ''नहीं'' और ''ख़ुदा'', ''सच'', ''इन्साफ़'' और ''सच्चाई'' के सामने ''हाँ''।

इन्हीं सत्य का झण्डा ऊँचा करने वालों की ''नहीं'' हिस्ट्री की जान ज़िन्दगी और ताक़त का कारण रही। इसी लॉजिकल ''नहीं'' और ''हाँ'' ने जीवन के धारे को सीध दी। उन के हाथ में ''नहीं'' वह तलवार थी जिसने ज़िन्दगी के सभी समाजी, सियासी और मन की बुराईयों को जड़ से ख़त्म कर दिया। पैग़म्बर वाली ''हाँ'' हमेशा एक 'नहीं' के साथ होती है।

हुसैन[अ०] का इनकार और ''नहीं'' मूसा[अ०] और इब्राहीम[अ०] की ''नहीं'' है। ये 'नहीं' तौहीद की गहराईयों से फूटती है। ये ''हाँ'' नहीं बन सकती इसलिए कि अगर ये ''नहीं'', ''हाँ'' बन जाए तो जितनी चीज़ें बुराइयों की नही करती हैं, वह सब बुराइयों को मान जाएंगी। ''नहीं'' सभी झूठी नक़ाबों की धज्जियाँ करके असल सच्चाई को सामने लाती है। इन्सान और संसार की बाढ़ और उठान बिना इस ''नहीं'' के हो नही सकती।

आदम[अ०] के वारिस हुसैन[अ०] से जब इब्ने ज़ुबैर ने पूछा कि अगर यज़ीद बैअत का न्योता दे तो आप क्या करेंगे। आपने कहाः मैं यज़ीद की बैअत नहीं करूँगा। आपने मुहम्मद बिन हनफ़िया को पुकारते हुए एलान कियाः ''ख़ुदा की क़सम, अगरे मेरे लिए सारी दुनिया में कहीं भी अमन और पनाह की जगह न हो तब भी मैं मुआविया के बेटे के हाथ पर हरगिज़-हरगिज़ बैअत न करूँगा।''

हुसैन[अ०] के इस इनकार और इस 'नहीं' ने हिस्ट्री में हमेशा के लिए एक गूँज पैदा कर दी है। ''नहीं'' यानी असत्य, अधर्म बातिल, शैतान और टेढ़ेपन के विरोध गुहार, अनशन और हर उस चीज़ हर उस ताक़त के मुक़ाबले में जो सच्चाई और ख़ुदा से टकराती है, इसके बाद ''इक़रार'' यानी ''हाँ'' सिर्फ़ ख़ुदा के और ख़ुदा की मर्ज़ी के आगे।

''हाँ'' और ''नहीं'' यानी ''मानने'' और ''इनकार'' की यही लॉजिक है जो ज़िन्दगी को इलेक्ट्रान और न्युट्रान के शुरुआती मरहलों से लेकर रूहानी और मान्सिक (Psychological) मरहलों की ऊँचाइयों तक इन्सान को रास्ता दिखाती है और इन्सानी ज़िन्दगी के बाक़ी रहने की ज़मानत है।

कर्बला के चौदह सौ बरस के बाद आज भी हुसैनी नस्ल का एक नायब इमाम और लीडर ज़माने के यज़ीदों के मुक़ाबले में इसी ''नहीं'' को दोहरा रहा है। इस ''नहीं'' में ऐसा यक़ीन निश्चय है कि जो बड़ी-बड़ी दबंग हुकूमतों का तख़्ता पलट सकती है। हुसैन[अ०] के पीछे चलने वाला समाज एक सीसा पिलाई हुई दीवार ''क-अन्नहुम बुन्यानुम मरसूस'' है जो पूरबी और पच्छिमी ताक़तों के मुक़ाबले पर खड़ी ''नहीं'' का जाप कर रहा है और हुसैनी पीढ़ी का अपने चलने से बंधे रहने का ये हाल है कि कर्बला फिर अपने आपको दोहरा रही है।

क़ुरआन बताता है कि फ़िरऔन की तरह के लोग हक़ का झण्डा उठाने वालों की तगड़ी पॉलीसियों और उनकी कामयाबियों के ख़िलाफ़ तरह-तरह के लान्छन, झूट और इल्ज़ाम लगाते हैं। मूसा[अ०] को फिरऔन ने कभी 'झूठा जादूगर' कहा, कभी दीवाना और कभी फ़साद फैलाने वाला कहा। यज़ीद भी मूसा[अ०] के वारिस हुसैन[अ०] को बाग़ी, विद्रोही, फ़साद फैलाने वाला और बवाली मशहूर करता है और चौदह सौ बरस बाद आज भी सत्य का झन्डा उठाने वालों को जिन झूटे आरोपों और इल्ज़ामों का सामना है इस से ज़ाहिर होता है कि हक़ और बातिल, सत्य और असत्य की जंग में बातिल के जंगी चालें और तरीक़े वही पिछले जैसे हैं और ज़माने के बदलने से उनके ढर्रे नहीं बदले।

हालात कितने मिलते जुलते हैं। ये फिरऔन का राज का ज़माना है। उसकी हुकूमत में हर ज़ुल्म, ज़्यादती 'अहम्' और ख़ुदग़रज़ी है। उसने लोगों की आज़ादी छीन रखी है और सच की आवाज़ उठाने वाले मूसा[अ०] को मिस्र छोड़ना पड़ाः-

"और जब वो मदियन की तरफ चले तो कहाः उम्मीद है कि मेरा परवरदिगार मुझे सीधे रास्ते की तरफ ले जायगा।" (क़सस, आयत-22)

और अब यज़ीदी राज है, एक बार फिर मुसलमानों के देश में ज़ुल्म और सितम, लूटमार का दौर-दौरा है। यज़ीद हुसैन[अ०] से बैअत चाहता है और हुसैन अटूट फैसल वाले अन्दाज़ में एक बार "नहीं" कहते हैं। यज़ीद इमाम के क़त्ल का हुक्म जारी करता है और इमाम बेबसी में अपनी औरतों और मासूम बच्चों के साथ मदीने को छोड़कर मक्का आ जाते हैं।

यज़ीद ने क्या किया?

नबियों के आन्दोलन एक मक़सद टेढ़ेपन और बहकाव से दबाव से बचाव था। ज़माने में जब तरह-तरह के बिगाड़ के नतीजे में इन्सानियत का क़ाफ़ला सीधे रास्ते से भटक जाता है, तो ऐसे में ख़ुदा के भेजे हुए रसूलों में से एक जेहाद (संग्राम) छेड़ देता है ताकि अल्लाह के धर्म के नूरानी और साफ़-सुथरे चेहरे पर थोपी हुई बिगाड़ और भटकाव के धब्बो को दूर कर दे।

जिस वक़्त इमाम हुसैन[अ०] ने कर्बला की तहरीक (Movement) शुरु की, उस वक़्त ख़ुदा का आख़री सबसे पूरा दीन इस्लाम भटकाव के दरवाज़े पर खड़ा था। ख़िलाफ़त की गद्दी पर यज़ीद का क़ब्ज़ा था, वह "ख़लीफ़ा" के नाम से मुसलमानों का धर्म नेता था और उसका हर काम सारे मुसलमानों के लिए आदर्श और नमूना समझा जाता था और ये ख़तरा सर पर मंडला रहा था कि कहीं कभी सही इस्लाम की सूरत बदल न जाए। ऐसे में हुसैन[अ०] चाहते थे कि अपना ख़ून, अली अकबर, अली असग़र, क़ासिम और अब्बास का ख़ून और ज़ैनब और उम्मे कुल्सूम की चादर देकर, गरज़ किसी भी क़ीमत पर "ख़िलाफ़त" के नाम पर मौजूदा हुकूमत को इस तरह धिक्कार दिया जाए कि अगर वह मिट न भी सके तो कम से कम ख़लीफ़ा को मुसलमानों का "दीनी ख़लीफ़ा" यानी धर्म का करता धरता किसी तरह न माना जाए और ख़लीफ़ा की शख़सियत शिक्षाओं का हिस्सा न बनने पाये। हुसैन[अ०] को अपने इस मक़सद में ज़बरदस्त कामयाबी हुई। यज़ीद से पहले जो ख़लीफ़ा थे यहाँ तक कि अमीर मुआविया तक ऐसे ही मिसाली नमूने समझे जाते थे, मगर यज़ीद और उसके बाद के ख़लीफ़ा के चलन इस्लामी शिक्षाओं से इतने अलग नज़र आने लगे कि मुसलमानों का कोई फ़िरक़ा भी ऐसा नहीं जो मान की निगाह से देखे। कर्बला संग्राम का यह एक महान कारनामा है। हुसैन[अ०] ने 'साम्राजी इस्लाम' के हाथ पर बैअत न की ताकि "मुहम्मदी इस्लामे" बचा रहे और मज़बूत रहे।

कर्बला के वरदान और बरकत से इस मैदान में हुसैनी काल अमर बन गया और सदा के लिए। जिस ज़माने में भी ये एहसास हुआ है कि असल इस्लाम भुलाया जा रहा है, इस्लामी उलमा इस्लाम बचाने के लिए अपनी जान हथेली पर रख कर खुले मैदान में आ गए हैं। अभी भी मलिक ख़ालिद जैसों के इस्लाम के ज़रिये से बराबर ये ख़तरा पैदा हो रहा है कि असल इस्लाम भुला दिया जाएगा। मलिक ख़ालिद जैसों के इस्लाम को इस्लाम के नाम से पेश किया गया, मगर इमाम ख़ुमैनी की अगुवाई में ईरान के इन्क़ेलाब ने अचानक इस तिलस्म को तोड़ दिया और दुनिया को दिखाया कि अमरीकी इस्लाम उस मुहम्मदी इस्लाम और असल इस्लाम से अलग है जिसके पहरेदार हुसैन[अ०] थे। 'ज़ोर', 'धन' और धोखा इस्लाम नहीं है, बल्कि इस्लाम वह है जो कमज़ोरों की मदद करे और पूरब और पच्छिम की ताक़तों से मुक़ाबला करने वाला हो, उनकी करने वाला न हो।

सच है, कर्बला का असर अभी बाक़ी है।

अपने भाई मुहम्मद बिन हनफ़िया के नाम इमाम हुसैन[अ०] की वसिय्यत इमाम[अ०] के मक़सद की एक ज़िन्दा और बोलती हुई सनद है जिसमें उन्होंने अपने असल मक़सद और पूरी पॉलीसी को खुलकर बताया है।

"मैं हुसैन[अ०] इब्ने अली[अ०] ये वसियत अपने भाई मुहम्मद बिन हनफ़िया के नाम कर रहा हूँ। ख़ुदा एक अकेला है और यह कि मुहम्मद[स०] अल्लाहके बन्दे (दास) और उसी के भेजे, सत्य की ओर से सत्य पर आए रसूल हैं। और मैं मानता हूँ कि जन्नत और जहन्नम

(बक़िया....... पेज 11 पर)

पेट भरती है। यज़ीद भी ज़ुल्म और सितम की पूरी नुमाइन्दगी कर रहा था उसे माद्दी (Material) मूल्यों के पाने में शुरुआती कामयाबियाँ मिल चुकी थीं, उसने सत्ता हड़प ली था, और रिश्वत, नाजाएज़ दबाव, ज़ुल्म और मक्कारी से उसने लोगों से बैअत ले ली थी (अपना राज मनवा लिया था) सिवाए कुछ लोगों के जो इमाम हुसैन अलैहिस्सलाम के साथ थे। ज़ुल्म और सत्ता की न ख़त्म होने वाली भूख ही तो थी जिसकी वजह से उसने अब रसूल[स॰] के नवासे के सामने भी बैअत का मसला पेश किया जिसका मतलब साफ था कि आप उसकी सरदारी और सत्ता को दुनियावी और दीनी हैसियतों से मान लें, जिसका नतीजा सिर्फ़ ये था कि इमाम हुसैन[अ॰] उन सभी नैतिक और इस्लामी मूल्यों और सारे दीनी ध्यान और हक़ीक़तों को छोड़ दें, जिनके वह अमानतदार थे और जो उन्हें अपनी जान से ज़्यादा अज़ीज़ थीं और इसका दूसरा रुख़ भी बिल्कुल साफ़ था कि अगर ये बात न हो सके तो फिर आप हर उस मुसीबत और आफ़त को झेलें जो मुमकिन हो सकती है। महान इमाम अपने धर्म फ़र्ज़ को पूरी तरह पहचानते थे, वह इस्लाम के उसूल और उसकी सच्चाई के अमानतदार थे, वह इस दौर में इस्लाम की इज़्ज़त की हिफ़ाज़त इस्लाम के लिए रसूल[स॰] के नवासे और इमाम होने की हैसियत से सबसे ज़्यादा ज़िम्मेदार थे। इसलिए उन्होंने इस बैअत की माँग को ठुकरा दिया, मन की आवाज़ और फ़र्ज़ के एहसास की कड़ाई उनके पक्के इरादे की बुनयाद थी और उन सभी डरावने नतीजों के मुक़ाबले में बहुत ज़्यादा ताक़तवर थी जो हार के बाद दुश्मन दरिन्दों के हाथों जंग के मैदान में बर्दाश्त करना पड़ते हैं। आपने इन्सान जाति को अपनी इस महान क़ुर्बानी से ये बात पूरी तरह समझा दी है कि अपना ज़ाती फ़ायदा, और अज़ीज़ों और दोस्तों या अपनी औलाद और रिश्तेदारों के हित और उनका आराम और राहत, इनमें से कोई चीज़ भी सच्चे उसूल और पाक विचारों के बचाव के मक़सद के सामने किसी तरह का भी मोल नहीं रखती। क्या हिंसा और ज़ुल्म के हाथों में ज़ंजीरें डालने के लिए इमाम हुसैन[अ॰] की क़ुर्बानी से ज़्यादा अहम कोई मिसाल मुमकिन हो सकती है? इसका जवाब बिल्कुल साफ़ है कि हरगिज़ नहीं। इस क़ुर्बानी ने बता दिया कि बुराई का मुक़ाबला हर क़ीमत पर किस तरह किया जा सकता है और कुछ लोग टिड्डी दल फ़ौजों के मुक़ाबले में किस तरह ईमानदारी और हक़ की हिमायत (सत्य का साथ) का फ़र्ज़ पूरा कर सकते हैं।

बक़िया ..... अमर शहीदों के सरदार इमाम हुसैन अलैहिस्सलाम

सच हैं और क़यामत के दिन ख़ुदा सबको उठायेगा। उस आने वाली घड़ी में कोई शक नहीं। बातिल के मुक़ाबिल में खड़े होने का मेरा मक़सद मौज मस्ती नहीं है बल्कि मेरा मक़सद उम्मत का सुधार और अपने नाना के समाज को भटकने से बचाना है। मैं चाहता हूँ कि "अच्छाइयों" का हुक्म करूँ और "बुराइयों" से बचाए रखूँ, मैं अपने नाना (हज़रत मुहम्मद[स॰]) और अपने पिताश्री (अली[अ॰]) के चलन से बंधा हुआ हूँ। इसलिए जो मेरे मक़सद को सच समझ कर मुझे मानें और मेरा साथ दे, तो ख़ुदा उसे सच में वरदान देगा (वह सआदत पाएगा) और जो मुझे ठुकराएगा तो मैं सहन करूँगा यहाँ तक कि ख़ुदा मेरे और लोगों के बीच फ़ैसला करे और वह बेहतरीन फैसला करने वाला है।"